भावना से कर्तव्य ऊंचा है

Bhavna se Kartavya uncha hai

संसार में असंख्य प्राणी हैं। उनमें सर्वाधिक और विशिष्ट महत्व केवल मनुष्य नामक प्राणी को ही प्राप्त है। इसके मुख्य दो कारण स्वीकार किए जाते या किए जा सकते हैं। एक तो यह कि केवल मनुष्य के पास ही सोचने-समझने के लिए दिमाग और उसकी शक्ति विद्यमान है, अन्य प्राणियों के पास नहीं। वे सभी कार्य प्राकृतिक चेतनाओं और कारणों से करते हैं, जबकि मनुष्य कुछ भी करने से पहले सोच-विचार करता है। दूसरा प्रमुख कारण है मनुष्य के पास विचारों के साथ-साथ भावना और भावुकता का भी होना या रहना। भावना नाम की कोई वस्तु मानवेतर प्राणियों के पास नहीं हुआ करती। भावनाशून्य रहकर वे सिर्फ प्राकृतिक नियमों से प्रेम, भय आदि का प्रदर्शन किया करते हैं। स्पष्ट है कि ये ही वे कारण हैं, जो मानव को सृष्टि का सर्वश्रेष्ट प्राणी सिद्ध करते हैं।

मानव जीवन में जो कुछ भी सुंदर, अच्छा और प्रेरणादायक है, वह भावनाओं के कारण या भावना का ही रूप है। मानव-जीवन में जो भिन्न प्रकार के संबंध और पारस्परिक रिश्ते-नाते हैं, उनका आधारभूत कारण भी भावना-प्रवणता ही है। किसी गांव, कस्बे, शहर, प्रांत, और देश की माटी से मनुष्य जो प्यार करता है, उसके लिए प्राणों तक को न्यौछावर कर देता या कर देना चाहता है, वह भावनाओं का संबंध, लगाव और प्रेरणा का ही परिणाम है। घर-द्वार से प्रेम, भाई-बहन या माता-पिता से स्नेह-सम्मान, जाति या राष्ट्र-प्रेम आदि अपनत्व के जितने भी स्वरूप हैंख् उन सबके मूल में भवना ही सक्रिय दिखाई देती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव-जीवन ओर उसके व्यवहारों में भावना का प्रमुख एंव महत्वपूर्ण स्थान है। उसके बिना रहा नहीं जा सकता, जीवन चल नहीं सकता। फिर भी यह चरम, अकाटय एंव व्यावहारिक सत्य है कि मानव-जीवन और समाज में भावना ही सब कुछ नहीं है। केवल भावना के सहारे मनुष्य जीवित रह नहीं सकता, संसार चल नहीं सकता। कोरी भावना हमेशा भडक़ाने और पथभ्रष्टट करने वाली होती है। वह व्य िकत को कर्म-विमुख करके भाज्य और भगवान के सहारे छोड़ देती है और तब व्यक्ति को कर्म-विमुख करके भाज्य और भगवान के सहारे छोड़ देती है और तब जीवन सार्थक न होकर नष्ट हो जाया करताह ै। इसी कारण भावना के साथ विचार का समन्वय आवश्यक स्वीकारा जाता है।

विचार करना बुद्धि का काम है। बुद्धि ही वह संचालिका-शक्ति है जो कम-प्रवृत्त करती है और कर्म ही जीवन है। या फिर कर्म से ही जीवन बनता और चलता है। इन्हीं मूल तथ्यों के आलोक में ही यह कहा जाता है कि 'भावना से कर्तव्य ऊंचा है।'

यह एक अनुभूत तथ्य है कि कोरी भावना के बल पर उन संबंधों को भी बनाए नहीं रखा जा सकता कि जो महज भावनाओं पर ही आधारित हुआ करते या स्वीकारे जाते हैं। उन संबंधों को बनाए रखने के लिए भी कर्म और कतव्य-पा5न की अनविार्य आवश्यकता पड़ा करती है। कहावत है कि न तो अभावों में भाव खोजा जा सकता है और न भावना की रोटियों से पेट ही भरा करता है।पेट भरने के लिए अनाज की रोटी की जरूरत हुआ करती है। अनाज उगाने और पाने के लिए कठोर कर्म करना पड़ता है और कर्म करने के कर्तव्य का पालन करके ही व्यक्ति अपना, अपने घर-परिवार, जीवन-समाज और समूचे राष्ट्र का अस्तित्व बनाए रह सकता है। अभावों में भावना की रोटियां खाने से यदि पेट भर जात, तब तो कहना ही क्या था। व्यक्ति को कुछ भी करने की आवश्यकता न पड़ती। वह खाता-पीता और मस्ती में ऊंघता रहता। परंतु ऐसा हो पाना संभव नहीं है। इसी कारण ही तो भावना पर कर्म और कर्तव्य को विशेष एंव अधिक महत्व दिया जाता है।

ऊपर के विवेचन का सार तत्व मात्र यह है कि मनुष्य महज भावना-प्रधान प्राणी ही नहीं, वह बौद्धिक, विचारवान और कर्तव्यपरायण प्राणी भी है। वह जानता है कि उसका पहला कर्तव्य तो अवश्य अपने और अपने घर-परिवार के प्रति हुआ करता है, परंतु घर से बाहर निकलने पर उसके लिए अपने गली-मुहल्ले, वहां से आगे बढऩे पर पूरे गांव या शहर, क्रमश: और आगे बढ़ते जाने पर जिला, प्रांत और देश के प्रति उसका कर्तव्य उसी क्रम से प्राथमिकता अख्तयार करता जाता है। कर्तव्यपरायण मनुष्य और उसकी मनुष्यता का अर्थ ही अपना विस्तार करते जाता है, कछुए की तरह अपने-आप से सिकुड़ते जाना नहीं है। इस व्यापक दृष्टि से व्यक्ति की भावना का भी घर-परिवार या व्यक्विादी चेतना की खोज से निकलकर अपने-आप विस्तार हो जाता है। दूसरे शब्दों में, विस्तार पाकर मनुष्य की भावना ही मानवोचित कर्तव्यों का स्वरूप धारण कर लिया करती है। हमारे विचार में इसी दृष्टि से भावना पर कर्तव्य को तरजीह दी जाती है, जो कि उचित ही है।

मानव-जीवन में अनंत अभाव हैं। इच्छाएं और कामनाएंए भी आंत हैं। अपने मूल रूप में वे सब भावनाश्रित ही हुआ करती हैं। भावना के स्तर से उसका उद्धार करके पूर्ति के रूप

में साकार करने के लिए कर्म करने का कर्तव्य सामने आ जाता है। संसार के तदनुरूप कर्तव्य कर्म करके ही भावनाओं को पूरा करना पड़ता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते कई बार मनुष्य के जीवन में भावना और कर्तव्य का द्वंद्व भी उपस्ाि्ित हो जाया करता है। तब भावना व्यक्ति-सुखों की ओर खींचती है, जबकि कर्तव्य समाष्टि या समाज के हितों की ओर खींचता है। व्यक्तियों और सच्चे मनुष्यों के जीवन में आने वाले ऐसे क्षणों में हमेशा भावना को नहीं, कर्तव्य-पालन को ही महत्व दिया जाताहै। श्रीराम ने जीवन के हर क्षेत्र में मर्यादांए स्थापित करने के लिए ही व्यक्तिगत सुखों को तिलांजलि देकर वन जाना स्वीकार किया। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने भी भावना के बदले राष्ट्रीय कर्तव्य-निर्माह के कठिन मार्ग को ही महत्व दिया। वे लोग भावना में बहकर अपने हित की बात भी सोच सकते हैं, परंतु नहीं, फिर उनमें और सामान्य कोटि के प्राणियों में क्या अंतर ही क्या रह जाता है जो केवल अपने लिए ही जीवित रहना जानते हैं। यह सारा विवेचन स्पष्ट कर देता है कि भावना का अपना अकाट्य महत्व रहते हुए भी कर्तव्य का स्थान उससे कहीं ऊंचा और महत्वपूर्ण है। दोनों का समन्वय करके चलना और भी उत्तम कहा-माना जाता है।